आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-६ ❀ अंक-२ ❀ अक्तूबर २०११

स्वाध्याय मंगल, ध्यान अति मंगल,
लगनी मंगल दिनरात रे,
स्वर्णभानु भरते उदित रे।
श्रुतलब्धि महासागर ऊछला,
वाणी वरसे अमीधार रे,
स्वर्णभानु भरते उदितं रे।

पूज्य बहिनश्रीके मुखसे

[पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रतापसे जिन्होंने मात्र १९वें वर्षमें आत्मानुभव प्राप्त किया, व जिनका अनन्य उपकार मुमुक्षु समाज पर एवम् सुवर्णपुरी पर वर्त रहा है। ऐसे पूज्य 'बहिनश्रीके वचनामृत' यत्किंचित् इस स्तंभ अन्तर्गत दिए जा रहे हैं।]

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है उसे दृष्टिके जोरमें अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञानकी परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्नमें भी आत्मा शरीरसे भिन्न भासता है। दिनको जागृत दशामें तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रातको नींदमें भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोगमें उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तथापि पृथक् ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभवमें अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूपसे विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है॥

*

पर्याय पर दृष्टि रखनेसे चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करनेसे ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्यमें अनंत सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोदसे लेकर सिद्ध तककी कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टिका विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्ध दृष्टिके विषयभूत मूल स्वभावमें नहीं है। द्रव्यदृष्टि करनेसे ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्यायकी दृष्टिसे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टिमें मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्यका ही स्वीकार होता है॥

*

'विकल्प छोड़ दूँ', 'विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करनेसे विकल्प नहीं छूटते। मैं यह ज्ञायक हूँ, अनंत विभूतिसे भरपूर तत्त्व हूँ—इस प्रकार अंतरसे भेदज्ञान करे तो उसके बलसे निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जाएँ॥

*

卐 आत्मधर्म 卐

आत्माको संभालकर जीना सिखाये श्री सद्गुरु कहान,
स्वाध्यायमंदिर स्वर्णपुरीसे, लाया 'आत्मधर्म' महान।

अक्तूबर २०११] ❀ अंक-२ ❀ [६२] ❀ [वर्ष-६

❀ समयसार स्तुति ❀

दि. ६-१०-२०११ को विजयादशमीके दिन पंडितरत्न हिम्मतभाई जे. शाहने परमागम श्री समयसार शास्त्रका गुजराती अनुवाद पूर्ण किया उसकी यह वार्षिक तिथि है। इस दिन समूहमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी निश्रामें व पूज्य बहिनश्रीके निर्देशनमें माँ जिनवाणी पूजा, भक्ति आदि द्वारा आराधना करते थे। उसी भाँति अभी भी स्वर्णपुरीमें यह उत्सव मनाया जाता है। हम यह पर्व गहरे आदर्श आत्मार्थी पंडितरत्न हिम्मतभाई जे. शाह द्वारा ई.स. १९३८में रचित माँ समयसार जिनवाणी की स्तुति द्वारा करते है।

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या.

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

मैं आत्मा चिदानन्द पूर्ण हूँ, कृतकृत्य परमात्मा ज्ञायक ही हूँ । ऐसी प्रतीतिके द्वारा भीतर अनन्त सामर्थ्यरूप शक्ति भरी हुई है, उस पर भार देनेसे सहज मोक्षदशा प्रकट होती है ।
—पूज्य गुरुदेवश्री

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

(पृष्ठ १७ का शेष भाग)

स्वयंको सिद्ध समान शुद्ध वर्तमानमें शक्तिमान इस तरह जानना कि जिसमें उसकी इतनी महिमा आवे कि उसके बिना उसका जीना दु:स्वार हो जाय वह ही द्रव्यदृष्टि है।

प्रश्न :—गतांकमें बताए सभी जीव रागी-द्वेषी स्पष्टरूपसे दिखाई दे रहे हैं उन्हें उसी समय वीतरागी कैसे देखा जा सकता है?

उत्तर :—जैसै स्फटिकमणि लाल कपड़ेके संयोगमें लाल दिखता है—होता है, फिर भी उसे स्फटिकमणिको उसके पारदर्शकता स्वभावकी दृष्टिसे देखा जाए तो स्फटिकमणिने अपना निर्मलत्व नहीं छोड़ा है अर्थात् उस ही समयमें उसने निर्मलत्व होनेका स्वभाव नहीं छोड़ा है, वैसे आत्मा रागादि व कर्मादिके संयोगमें रागी दिखता है—होता है; फिर भी स्वभावकी दृष्टिसे देखा जाय तो उसने अपनी शुद्धता-वीतरागत्व स्वभाव नहीं छोड़ा है। अत: पर्यायसे—वैविध्यतासे देखनेकी दृष्टिसे देखें तो आत्माको वैविध्यता वर्त रही है; फिर भी उसे ही उसी समय द्रव्य स्वभावकी दृष्टिसे देखें तो उसकी वीतरागताका अनुभव हो सकता है। *(क्रमश:)* ❑

अपने यथार्थ स्वरूपको जानकर, उसमें एकाग्र होकर, अनन्त जीव मोक्ष गये है; मोक्ष कहीं बाहर नहीं है; अपनी पूर्ण निर्मल शक्तिको प्रकट करना सो मोक्ष है ।—पूज्य गुरुदेवश्री

मंगल सुखरूप दीपावली

(दि. २६-१०-२०११ को भगवान महावीरका निर्वाण कल्याणक दिन है। यह पर्व पूज्य गुरुदेवश्रीके समयसे ही पूज्य बहिनश्रीके निर्देशनमें रची रजत-पावापुरी की रचना पर इन्द्रों द्वारा निर्वाणकल्याणक मनाकर सामूहिकरूपमें निर्वाणकल्याणक पूजा-भक्ति द्वारा सभी आराधना करते है। पूज्य बहिनश्रीके पावन निर्देशनसे आज भी उसी भांति यहाँ यह उत्सव मनाया जाता है। इस प्रसंग पर निर्वाण प्राप्त परम भट्टारक इस कालमें धर्मतीर्थनायक, शासननायक भगवान महावीर स्वामीको कोटि कोटि वंदना करते हुए....)

अहो ! ऋषभादि महावीरपर्यंत जिनवर भगवंत आदि समस्त निज आत्माकी योगभक्ति द्वारा ही मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। अहा ! मोक्ष वह तो परम आनंदसे तृप्त दशा है। परम आनंदमय तत्त्वमें जो परिणति ढल गई वह स्वयं आनंदरूप हो गई और भवसे छूट गई। अत: हे मोक्षसुखके अभिलाषी भव्यजन् ! तू भी तेरी परिणतिको आत्मामें जोड़कर ऐसी योगभक्ति कर। यह योगभक्ति तुझे परम वीतराग सुख देनवाली है।

भगवान महावीरस्वामीने आजसे २५३७ वर्ष पूर्व आजके दिन ऐसी योगभक्ति द्वारा निर्वाणनाथ अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया।

अहो ! ऐसा सुंदर आनंदके झरनेरूप मेरा उत्तम तत्त्व है; उसकी भावनासे भी अपूर्व सुख मिलता है। अहा ! सहज सुखरूप मेरा तत्त्व है, उसकी भावनामें तत्पर ऐसे मुझे अब जगतके किस पदार्थ की स्पृहा रहे ?

अत: श्रीगुरुके सानिध्यमें हम निर्मल सुखकारी धर्म प्राप्त करें ऐसी भावना।

हे महावीर प्रभु ! जैसे तब तक विप्र गौतम, आपकी सभामें नहीं आए तब तक आपकी दिव्य वाणी नहीं खिरी व उनके आने पर आपने उसके पात्रको पियूषसे—दिव्य वाणीरूप अमृतसे—भर दिया, अहो ! कैसे उत्तम पात्र होंगे कि आपके दरबारमें आते ही आपने दिव्य अमृतसे उनका पात्र भर दिया, प्रभो ! मेरी यह ही एक अभिलाषा है कि मुझे भी विप्र गौतम जैसा पात्र बनाओ।

हे वीर स्वामी ! आपके मार्ग पर जो जीव चलेंगे और आपकी पूजा भावसे करेंगे ऐसे आसन्नभव्य जीव ही आपकी स्तुति करेंगे व वे भव्य अनेक प्रकारकी लब्धियाँ पाकर पूर्ण सुखी–अर्थात् सिद्धदशा प्राप्त करेंगे।

*

> **स्वयं तो मूर्छित है और दूसरे पर आरोप करता है कि पर मुझे राग-द्वेष और लाभ-अलाभ कराता है तब वह कब और कैसे सुधरेगा ?** —पूज्य गुरुदेवश्री

मंगलमय सुप्रभात

(दि २७-१०-११ को मंगल सुप्रभात है यह दिन पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थितिमें बहुत ही उत्साह से मनाया जाता था। पूज्य गुरुदेवश्री जल्दी सुबहमें मंगल वचन कहकर मुमुक्षुओंका नया वर्ष उज्ज्वल करते थे। उसी भांति वर्तमानमें भी पूज्यश्रीके मंगल आशीर्वचन सुनकर ही मुमुक्षु अपना कार्य करते हैं व उसी भांति यह उत्सव बहुत उल्लाससे समूह पूजा, भक्ति, आदि द्वारा मनाते है।)

अहो ! आत्माका सुख, जो अनाकुल है व जो रागरहित है उसका स्वाद अज्ञानी जीवको कभी आया नहीं था। सम्यग्दर्शनरूपी चैतन्य सुप्रभात उगा, तब आत्माके अनुभव में अपूर्व आह्लादरूप सुखका स्वाद प्रथमबार आया व पश्चात् शुद्धोपयोगरूप लीनता द्वारा केवलज्ञान होने पर वह सुख अतिशयरूपसे अनुभव में आया, तब पूर्ण सुखका समुद्र उछलनेरूप सुप्रभातका उदय हुआ। ऐसे सूर्यका सभी अरहंत व सिद्ध परमात्मा निरन्तर अनुभव कर रहे हैं। उस सुखकी क्या बात ! ऐसा सुख ही प्रशंसनीय व वंदनीय है, ऐसे सुखको त्रिकाल कोटि-कोटि वंदन ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान व वीतराग चारित्रमय सुप्रभात भगवान श्री कुंदकुंदाचार्य, भगवान अमृतचंद्राचार्य व उसी भांति समकित सुप्रभात ऐसे पूज्य कहानगुरुदेव व पूज्य बहिनश्री आदि संत उस सुखकी ही भावना भाते हैं व ऐसे सुखकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते हैं कि ऐसा सुखमय स्वभाव स्वयं है। अरे ! प्रसन्नतासे उसकी प्रतीत तो करो। जो 'है' उसके अस्तिका स्वीकार करते वह अनुभवमें आता है और सुखमय सुप्रभात खिल जाता है।

आचार्यदेव कहते हैं कि—

सानन्दं सुरसुन्दरीभिरभितः शक्रैर्यदा गीयते प्रातः प्रतरधीश्वरं यदतुलं वैतालिकैः पठ्यते ।
यच्चाश्रावि नभश्चरैश्च फणिभिः कन्याजनाद्गायतस्तद्वन्दे जिनसुप्रभातमखिलत्रैलोक्यहर्षप्रदम् ।।4।।

जिस सुप्रभातका प्रकाश हो जाने पर लोकमें पापरूप चोर अतिशय शीघ्र नष्ट हो जाता है तथा जिस सुप्रभातके प्रकाशमें दोषेश अर्थात् मोहरूप चन्द्रमा भीतरमें अतिशय मलिन होकर मन्दप्रभावाला हो जाता है, तथा जिस सुप्रभातके होने पर अन्यायरूप अन्धकारसमूहके नष्ट हो जानेसे दिशायें निर्मल हो जाती हैं; ऐसा वह वन्दनीय व अविनश्वर जिन भगवानका सुप्रभात वृद्धिको प्राप्त होवे।

*

निर्विकल्प सम्यग्दर्शनके समय शुद्धनयके अनुभवरूपसे गुण-गुणीके भेदसे रहित भगवान आत्मा एकाकार ज्ञात हुआ सो उसे शुद्धनय कहो आत्मानुभूति कहो या आत्मा कहो एक ही है, भिन्न नहीं है ।

—पूज्य गुरुदेवश्री

वीतरागी जिनधर्मानुसार

पदार्थका संविधान - पदार्थ विज्ञान

[प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार गाथा ९३ से ९७ तकके प्रवचन पूर्ण हुए।
अब गाथा ९८ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन चल रहे हैं।]

अब, द्रव्योंसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति होनेका और द्रव्यसे सत्ताका [1]अर्थान्तरत्व होनेका खण्डन करते हैं। (अर्थात् ऐसा निश्चित करते हैं कि किसी द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती और द्रव्यसे अस्तित्व कोई पृथक् पदार्थ नहीं है) :—

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ।।९८।।

द्रव्यो स्वभावे सिद्ध ने 'सत्'—तत्त्वतः श्री जिनो कहे;
अे सिद्ध छे आगम थकी, माने न ते परसमय छे. ९८.

(गाथा ९८ के शीर्षक पर प्रवचन)

प्रत्येक पदार्थ है उनमें ''जीवके ज्ञानमें 'जानना' ऐसी शक्ति है'' उस भांति अनेक प्रकारकी शक्तियाँ है अर्थात् सत् व ज्ञान सामर्थ्यसे भरे आत्माकी ओर, जब आत्मा झुकता है उसका नाम सबका जाननहार बन जाना है। तब वह रागको जानते भी उसके साथ एकताका कार्य नहीं करता। सबको जाने पर किसीको फिरानेका कार्य नहीं करता—उसका नाम वीतरागदृष्टि है।

एक द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी, किसीके गुणसे अन्यके गुणकी या पर्यायकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। द्रव्यमेंसे समय-समयमें नई-नई पर्याय उत्पन्न हुआ करती है परन्तु नई वस्तु नहीं होती। जैसे आटेमेंसे रोटी उत्पन्न होती है वैसे रोटीमेंसे जीवके ज्ञान सुखादि उत्पन्न नहीं होते। किसी संयोगसे गुण इकट्ठे होकर द्रव्य बढ़े या पुष्ट हो ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्रव्यमें अनंत शक्ति है उसमेंसे नई-नई पर्याय क्रमबद्ध उत्पन्न होती है। जो 'है' उसमेंसे होता है, अन्यसे नहीं।

आत्मा अपनेमें (भीतर ज्ञानमें) सब कुछ कर सकता है, परमें कुछ नहीं कर सकता; इसलिए बाहरका करनेको कुछ नहीं कहते । —पूज्य गुरुदेवश्री

बाह्यमें व्रत-तपके शुभभाव करे तो पुण्य बंधता है परंतु अविकारी पर्याय नहीं बढ़ती। उससे आत्माका उपधान नहीं होता। धर्मी जीवको एकसाथ निर्मल पर्याय बहुत बढ़ जाय और पुद्‌गल में वर्णादिकी एकदम वृद्धि प्रकट होती दिखाई दे, वहाँ बाहरसे आकर कोई कार्य कर जाता है—ऐसा नहीं है।

कोई गुणी (द्रव्य)से गुण भिन्न नहीं रहते, परंतु आत्माके या पुद्‌गल के जो-जो अनंत गुण हैं, वे परसे भिन्न रहकर स्वद्रव्यसे ही कार्य करते हैं।

नई पर्याय उत्पन्न होती है वह उसके द्रव्यको सिद्ध करती है परंतु वे अन्य द्रव्य-क्षेत्रको सिद्ध नहीं करती। 'शरीरमें आत्मा है' इसलिए खून गर्म है—ऐसा नहीं परंतु खून है वे परमाणुकी सत्ताको सिद्ध करते हैं। वैसे ही आत्मामें ज्ञान-चारित्र आदि पर्याय कम थी और बढ़ी तो वे देव-शास्त्र-गुरु या आहार, पानी, प्रकाश आदिमेंसे आई—ऐसा नहीं, परंतु अपने द्रव्य-गुणका अनंत सामर्थ्य है उनसे पर्यायकी उत्पत्ति होती है। द्रव्यसे अस्तित्व कोई भिन्न पदार्थ भी नहीं है।—ऐसी बात कहते हैं।

(टीका) :— वास्तवमें द्रव्योंसे द्रव्यान्तरोंकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। (उनकी) स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनतासे है; क्योंकि अनादिनिधन साधनान्तरकी अपेक्षा नहीं रखता। वह गुणपर्यायात्मक ऐसे अपने स्वभावको ही—जो कि मूल साधन है उसे—धारण करके स्वयमेव सिद्ध हुआ वर्तता है।

जो द्रव्योंसे उत्पन्न होता है वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, कादाचित्कपनेके कारण पर्याय है; जैसे—द्विअणुक इत्यादि तथा मनुष्य इत्यादि। द्रव्य तो अनवधि (मर्यादा रहित) त्रिसमय-अवस्थायी (त्रिकालस्थायी) होनेसे उत्पन्न नहीं होता।

अब इसप्रकार—जैसे द्रव्य स्वभावसे ही सिद्ध है उसीप्रकार '(वह) सत् है' ऐसा भी उसके स्वभावसे ही सिद्ध है, ऐसा निर्णय हो; क्योंकि सत्तात्मक ऐसे अपने स्वभावसे निष्पन्न हुए भाववाला है (—द्रव्यका 'सत् है' ऐसा भाव द्रव्यके सत्तास्वरूप स्वभावका ही बना हुआ है)। द्रव्यसे अर्थान्तरभूत सत्ता उत्पन्न नहीं है (-नहीं बन सकती, योग्य नहीं है) कि जिसके समवायसे वह (-द्रव्य) 'सत्' हो। (इसीको स्पष्ट समझाते हैं) :—

जैसे धागा लगी हुई सुई नीचे गिर गई हो तो वह ढूँढने पर जल्दी हाथ आ जाती है, इसीप्रकार यदि एकबार सम्यग्ज्ञानसहित सच्ची दृष्टि प्राप्त की हो और फिर भूल हो जाय तो भी अल्पकालमें आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है । —पूज्य गुरुदेवश्री

टीका पर प्रवचन

यथार्थतया अनादिसे द्रव्य 'सत्' होनेसे उससे अन्य द्रव्यकी या उसके गुणकी उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि सभी द्रव्य स्वभावसे ही अपने गुण-पर्यायसे सिद्ध है। कोई ईश्वर कर्ता है अतः हुए है—ऐसा नहीं।

ऐसा अनादि-अनंत व्यवस्थितरूपसे अपनी-अपनी सत्ता से है। कोई परमेश्वर उनका कर्ता नहीं परन्तु उसकी नई-नई पर्यायका उत्पाद व पुरानी पर्यायका व्यय करनेवाला अलग—ऐसा द्रव्य नहीं है। जड़ परमाणु आदि उनके जड़पनेमें अभिन्न है। चेतन अपने गुण-पर्यायमें स्वयम् सिद्ध है। यदि ऐसा न माने तो वह स्व-पर कुछ नहीं रहता है। पुत्र, पैसा, खाना-पीना वे कहीं अन्य स्थानसे नये नहीं आते है परंतु वे पुद्‌गल परिवर्तनके कालमें उन-उन द्रव्यकी पर्याय अपने स्वकालमें होने योग्य होनेसे हुई है। किसी जीव या पुद्‌गल और उनके गुण नये नहीं आते। उन-उन द्रव्यकी नई-नई पर्यायकी उत्पत्ति उनसे स्वयं होती है व प्रत्येक गुण-गुणी स्वयंसे अभेद व अनादि-अनंत होनेसे नई-नई अवस्था करनेमें और पुरानी अवस्था बदलनेमें कोई अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रखते। प्रत्येक आत्मा साररूप ऐसे अपने गुण-पर्याय स्वभावको ही—कि जो मूल साधन है उसे—धारण करके स्वयमेव सिद्ध हुए वर्तते हैं। सभी अनादि-अनंत स्वयम्‌से ही टिक रहे है।

आत्मा और परमाणुओं द्वारा अपनी-अपनी नई-नई अवस्था होती है। जैसे : दो परमाणुके स्कंध पर्यायका व्यय होकर तीन अणुके स्कंधरूप पर्याय होती है, वह पर्यायमेंसे पर्याय नहीं हुई है परन्तु पर्याय अपने द्रव्यमेंसे हुई है।

प्रश्न : क्या पर्यायमेंसे पर्याय नहीं होती है ?

उत्तर : नहीं, परन्तु कोई माने कि प्रथम १० परमाणुरूप स्कंध पिंड था, उसमें पांच परमाणुका पिंड मिला, तो पूर्व पर्यायमेंसे नई पर्याय हुई ? तो वैसा नहीं; परन्तु उनके द्रव्य-गुणके आश्रयसे नई-नई पर्याय होती है।

द्रव्यसे नया उत्पन्न होनेवाला वह अनेरा द्रव्य नहीं परन्तु अनित्य होनेसे पर्याय है। लोहमेंसे राख होती है, उसमेंसे वनस्पतिके टुकड़े होते है, वह नया द्रव्य नहीं परन्तु द्रव्यमेंसे

अविरोधरूपसे तत्त्वको जानकर सत्‌का आदर किया तो सत्‌की आराधनाके फल मोक्ष और सत्‌की चिंता न की तो विराधनाका फल निगोद है। —पूज्य गुरुदेवश्री

हुई नई पर्याय है। पर्यायमेंसे पर्याय नहीं होती। दो परमाणु इकट्ठे हुए तो कोई नया द्रव्य नहीं हुआ है, परन्तु पर्याय हुई है।

चौमासे में बहुत धूलके धूलिकण इकट्ठे होकर मेढक, केंचुआ आदि बन जाते हैं, हजारों वनस्पति उत्पन्न हो जाती है तो क्या जगतमें जीव और धूलीकण नहीं थे और उत्पन्न हुए ? या द्रव्यमेंसे नये द्रव्य हुए ? नहीं; द्रव्य-गुण नये नहीं होते परन्तु द्रव्यमेंसे पर्याय नई उत्पन्न होती है। परमाणु जो वर्तमान स्थूलरूप प्रथम दिखते नहीं थे और बादमें दिखे तो वे उनके स्वकालमें उनकी योग्यताके कारण सूक्ष्ममेंसे स्थूल अवस्थारूप होते हैं। बादल आदि तथा मनुष्य शरीर आदि पर्यायें नई-नई होती हैं परन्तु द्रव्य नहीं।

अब जब द्रव्य त्रिकाल एकरूप होनेसे नया नहीं होता वैसे सत्ता नामका गुण भी गुणी ऐसे द्रव्यमें अनादि स्वभावसे ही सिद्ध है। द्रव्यसे सत्ता कोई भिन्न वस्तु नहीं या किसीके जुड़नेसे द्रव्य सत्तावान कहलाता है ? कोई मानता है कि संयोगसे गुण नये आते है, जैसे मिट्टीमें गंध नहीं थी, बारिस गिरनेसे नई गंध ख्याल में आई तो ऐसा नहीं है परन्तु गंध गुणकी अव्यक्त पर्याय थी वह स्थूलरूप व्यक्त हुई। गुण तो गुणीसे भिन्न नहीं होते।

प्रथम तो सत्‌से सत्ताकी युतसिद्धतासे अर्थान्तरत्व नहीं है, क्योंकि दण्ड और दण्डीकी भाँति उनके सम्बन्धमें युतसिद्धता दिखाई नहीं देती। (दूसरे) अयुतसिद्धतासे भी वह (अर्थान्तरत्व) नहीं बनता। 'इसमें यह है (अर्थात् द्रव्यमें सत्ता है)' ऐसी प्रतीति होती है इसलिये वह बन सकता है, —ऐसा कहा जाय तो (पूछते हैं कि) 'इसमें यह है' ऐसी प्रतीति किसके आश्रय (-कारण) से होती है ? यदि ऐसा कहा जाय कि भेदके आश्रयसे (अर्थात् द्रव्य और सत्तामें भेद होनेसे) होती है तो, वह कौनसा भेद है ? प्रादेशिक या अताद्भाविक ? [४]प्रादेशिक तो है नहीं, क्योंकि युतसिद्धत्व पहले ही रद्द (नष्ट, निरर्थक) कर दिया गया है, और यदि [५]अताद्भाविक कहा जाय तो वह उपपन्न ही (ठीक ही) है, क्योंकि ऐसा (शास्त्रका) वचन है कि 'जो द्रव्य है वह गुण नहीं है।' परन्तु (यहाँ भी यह ध्यानमें रखना कि) यह अताद्भाविक भेद 'एकान्तसे इसमें यह है' ऐसी प्रतीतिका आश्रय (कारण) नहीं है, क्योंकि वह (अताद्भाविक भेद) स्वयमेव उन्मग्न और निमग्न होता है। वह इसप्रकार है :—जब द्रव्यको पर्याय प्राप्त कराई जाय (अर्थात् जब द्रव्यको पर्याय प्राप्त करती है—पहुँचती है इसप्रकार पर्यायार्थिकनयसे देखा जाय) तब ही—

> **सिद्ध भगवान प्रतिसमय अनंत-आनन्दके अनुभवका संवेदन करते हैं, और इससे विपरीत निगोदमें जीव प्रतिसमय अनंत आकुलतारूप मूर्च्छाका संवेदन करता है। —पूज्य गुरुदेवश्री**

‘शुक्ल यह वस्त्र है, यह इसका शुक्लत्व गुण है’ इत्यादिकी भाँति— ‘गुणवाला यह द्रव्य है, यह इसका गुण है’ इसप्रकार अताद्‌भाविक भेद उन्मग्न होता है; परन्तु जब द्रव्यको द्रव्य प्राप्त कराया जाय (अर्थात् द्रव्यको द्रव्य प्राप्त करता है;— पहुँचता है इसप्रकार द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय), तब जिसके समस्त [३]गुणवासनाके उन्मेष अस्त हो गये हैं ऐसे उस जीवको— ‘शुक्लवस्त्र ही है’ इत्यादिकी भाँति— ‘ऐसा द्रव्य ही है’ इसप्रकार देखने पर समूल ही अताद्‌भाविक भेद निमग्न होता है। इसप्रकार भेदके निमग्न होने पर उसके आश्रयसे (-कारणसे) होती हुई प्रतीति निमग्न होती है। उसके निमग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना निमग्न होता है, इसलिये समस्त ही एक द्रव्य ही होकर रहता है। और जब भेद उन्मग्न होता है, वह उन्मग्न होने पर उसके आश्रय (कारण) से होती हुई प्रतीति उन्मग्न होती है, उसके उन्मग्न होने पर अयुतसिद्धत्वजनित अर्थान्तरपना उन्मग्न होता है, तब भी (वह) द्रव्यके पर्यायरूपसे उन्मग्न होनेसे,— जैसे जलराशिसे जलतरंगें व्यतिरिक्त नहीं हैं (अर्थात् समुद्रसे तरंगें अलग नहीं हैं) उसीप्रकार— द्रव्यसे व्यतिरिक्त नहीं होता।

टीका पर प्रवचन

(१) जैसे लकड़ीके संयोगसे मनुष्य लकड़ीवाला कहा जाता है उसी भांति ‘सत्ता’ व ‘सत्’ द्रव्य जुड़कर सत्तावानरूप नहीं हुए। आत्मा और उनके ज्ञानादि गुण या सत्तागुण जुड़कर आत्मा ज्ञान व सत्तावान जुड़कर नहीं है। अनादि स्वभावसे ही वह ज्ञानवान व सत्तावान हैं। लकड़ी व लकड़ीवालेकी भांति ‘सत्ता’ और ‘सत्’के संबंधमें युतसिद्धपना नहीं है।

(२) अयुतसिद्धपना द्वारा ‘सत्’ और ‘सत्ता’ इकट्ठे नहीं हुए हैं। आत्मा और ‘सत्ता’ परसे तो इकट्ठे हुए--ऐसा तो सिद्ध नहीं होता परन्तु जैसे अनेक लकड़ीयाँ जुड़नेसे दरवाजा होता है वैसे द्रव्यमें सत्ता जुड़ी है या नहीं? तो कहते हैं कि नहीं। वे तो अग्नि व उष्णताकी भाँति एकरूप हैं।

गुणीमें गुण है ऐसा कहो तो हम पूछते हैं कि ऐसा क्यों मानते हो? यदि गुण-गुणी भेदके आश्रयसे मानते हो तो कैसा भेद? प्रदेशभेद या अताद्‌भाविक भेद? थालीमें बेर जैसे गुण व गुणीमें प्रदेशभेद नहीं क्योंकि युतसिद्धपना तो प्रथम ही निषेधा गया है।

यदि अताद्‌भाविक भेद अर्थात् प्रदेश-भिन्न नहीं है--यदि ऐसा माने तो वहाँ ‘गुण’ वह

जिसके ज्ञानमें यह बात नहीं जमती कि स्वभावकी स्वीकृतिमें अनन्त सुलटा पुरुषार्थ होता है वह भगवानकी वाणीको समझनेकी शक्ति कहाँसे लायेगा ? —पूज्य गुरुदेवश्री

'द्रव्य' नहीं और 'द्रव्य' वह 'गुण नहीं'—ऐसे द्रव्य और 'सत्ता'में कथंचित् भेद कहो तो वह योग्य ही है। वे भेद एकांततया नहीं है परन्तु उसमें अनेकांत है।

जब द्रव्यको पर्याय प्राप्त होती है तब सफेद यह वस्त्र है और इसका सफेद गुण है, ऐसा पर्यायार्थिक-नयसे है। इसी भांति भेददृष्टिसे देखनेमें आये तब 'यह इसका गुण है, व गुणवाला यह द्रव्य है' ऐसा अताद्‌भाविक भेद-प्रकट–मुख्य होता है; परन्तु जब 'द्रव्य'को 'द्रव्य' प्राप्त करता है–ऐसा अभेदरूप देखनेवाला द्रव्यार्थिकनयसे देखता है तब समस्त भेद वासनाके अभिप्रायरूप गुणभेदके विकल्प नहीं रहते और तब भेदवासित प्रतीति भी डूब जाती है। गुण और गुणीके लक्षण भिन्न है—ऐसे भेदको गौण करनेवालेकी अभेद दृष्टिमें गुणभेदके विकल्प नहीं रहते। परकी तो यहाँ बात ही नहीं कही है। गुण-गुणीके प्रदेशभेदके भेद तो है ही नहीं। गुणभेद भी मात्र भेददृष्टिको मुख्य करनेसे मालूम पड़ते हैं।

पहाड़ पर यात्रा करने पर आकुलता होती है क्योंकि उसमें पराश्रय है, आकुलता टालने व सुखरूप होना हो तो अनंत गुणके पिंडरूप स्वद्रव्यके आश्रयसे स्व-पहाड़की यात्रा करो। उसे ही अभेदरूप देख। निर्विकल्पतामें गुण-गुणी भेद नहीं रहते। जैसे जलराशिसे जलकल्लोल भिन्न नहीं अर्थात् समुद्रसे तरंग भिन्न नहीं वैसे ही द्रव्यसे गुण-पर्याय भिन्न देखनेमें नहीं आते। द्रव्य और उसकी अनंत गुणराशिसे उत्पन्न होती उसकी पर्यायें भिन्न नहीं पर एक सत्‌की अभेद सत्ता है उसमें अन्यके साथ संयोगसे गुण-पर्याय हो ऐसा नहीं है। *(क्रमशः)*

* * *

यद्भानोरपि गोचरं न गतवान् चित्ते स्थितं तत्तमो भव्यानां दलयत्तथा कुवलये कुर्याद्विकाशश्रियम् ।
तेजः सौख्यहतेरकर्तृ यदिदं नक्तंचराणामपि क्षेमं वो विदधातु जैनमसमं श्रीसुप्रभातं सदा ।।7।।

अर्थ : भव्य जीवोंके हृदयमें स्थित जो अन्धकार सूर्यके गोचर नहीं हुआ है अर्थात् जिसे सूर्य भी नष्ट नहीं कर सका है उसको जो जिन भगवान्‌का सुप्रभात नष्ट करता है, जो भूमण्डलके विषयमें विकासलक्ष्मी (प्रमोद) को करता है–लोकके सब प्राणियोंको हर्षित करता है तथा जो निशाचरोंके तेज और सुखका घात नहीं करता है वह जिनभगवानका अनुपम सुप्रभात हम सबका कल्याण करें। *(श्री पद्मनंदी पंचविंशति, सुप्रभाताष्टकम्, श्लोक 7)*

तत्त्वकी बात समझने योग्य है । जो समझना चाहे वह समझे और जिसे रुचे वह माने; सत् किसी व्यक्तिके लिए नहीं है । सत्‌को संख्याकी आवश्यकता नहीं है ।—पूज्य गुरुदेवश्री

भेदविज्ञानसे ज्ञात होता निज आत्माका एकत्व-विभक्त सर्वविशुद्धज्ञान स्वरूप

[समयसार शास्त्र एक अद्वितीय शास्त्र है, उसके विविध अधिकारोंमें सम्यग्दर्शनके विषयरूप आत्माके एकत्व-विभक्त ज्ञातास्वभावकी मुख्यतापूर्वक नव तत्त्वोंका स्वरूप दर्शाया गया है। ऐसा एकत्वरूप आत्मा होनेसे वह परसे विभक्त सर्व विशुद्ध ज्ञानानंदमय-आदिरूप देदीप्यमान रहता है—ऐसे उपसंहार स्वरूप गा. ३९० से ४०४ पर हुए पूज्य गुरुदेवश्रीके भाववाही प्रवचन यहाँ दिए जा रहे हैं।]

(अब तक आचार्यदेवने शास्त्र, शब्द, रूप, रंग, गंध, रस, स्पर्श, 'धर्म-अधर्म व काल' आदिसे भेदज्ञान कराकर अब 'आकाश'से भेदज्ञान करा रहे है।)

आकाश और ज्ञानका भिन्नत्व

आकाश ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह अचेतन है इसलिए ज्ञान और आकाशका भिन्नत्व है।

● जिनवाणीका सार

आज प्रवचनसारकी प्रभावनाका दिन है। प्रवचन अर्थात् जिनवाणी। उपरोक्त ज्ञानस्वभावी आत्माको जानना ही सर्व जिनवाणीका अर्थात् प्रवचनसारका सार है।

● चेतनको भूले वह ज्ञान अचेतन है

आकाशकी अनंतता आदि छहों द्रव्योंको राग सहित लक्ष्यमें ले—उतना विकास तो अज्ञानमें भी होता है। समस्त द्रव्योंमें आकाश अनंतगुने प्रदेशवाला है—ऐसा तो मिथ्याश्रुतज्ञान भी ख्यालमें लेता है। परन्तु पर पदार्थोंका चाहे जितना ज्ञान करे वह आत्माके जाननेमें कार्यकारी नहीं होता। अपने स्वभावकी स्वीकृतिके बिना जितना परका ज्ञान हो वह सब अचेतन है। चेतन तो उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली ज्ञानस्वभावको स्वीकार करके उसमें अभेद हो। चैतन्यसे भेद करके परमें अभेदत्व माने तो वह ज्ञान चेतनका विरोधी है।

आकाश जड़ द्रव्य है और उसमें ज्ञान नहीं है—ऐसा तो सामान्यतः अनेक जीव मानते हैं, परन्तु यहाँ मात्र आकाशका ही अचेतनत्व सिद्ध नहीं करना है किन्तु आचार्यदेवने यहाँ गूढ़भाव

भरे हैं। अकेले आकाशकी ओरका ज्ञान भी अचेतन है—ऐसा कहकर त्रिकाली आत्मस्वभावके साथ ज्ञानकी एकता बतलाते हैं। इससे वर्तमानज्ञानमेंसे परका और पर्यायका भी आश्रय छोड़कर त्रिकाली द्रव्यका आश्रय करना बतलाया है।

● पात्र जीवको स्वोन्मुख करनेका उपदेश

जिस जीवने कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र-कुतीर्थकी मान्यता छोड़ दी है, और जैनके नामपर भी जो कल्पित मिथ्या मार्ग चलता है उसकी श्रद्धा छोड़कर सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा–पहिचान की है और उनके कहे हुए आकाशादि द्रव्योंके विचारमें ही रुका है, परन्तु अपने स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं होता—ऐसे पात्र जीवके लिए यहाँ उपदेश है कि हे जीव ! पर द्रव्योन्मुख होकर रागसहित जो ज्ञान जाने वह तेरा स्वरूप नहीं है, परन्तु चैतन्यस्वभावोन्मुख होकर ज्ञानकी जो अवस्था चैतन्यस्वभावमें अभेद होकर स्व-परको जाने वह तेरा स्वरूप है। चैतन्यस्वभावोन्मुख होकर उसमें लीन हुई पर्याय ही चैतन्यका सर्वस्व है।

● सत्‌की दुर्लभता और श्रोताकी पात्रता

यह बात आत्मस्वभावकी है। किन्हीं अन्य संप्रदायोंके साथ अथवा लौकिक बातोंके साथ इसका किंचित् मेल नहीं बैठ सकता; और यह बात अन्यत्र जहाँ-तहाँसे मिले ऐसी नहीं है। तथा जिसे आत्मकल्याणकी दरकार है, भवभ्रमणका डर है—ऐसे आत्मार्थीके अतिरिक्त दूसरे जीवोंको यह बात नहीं जम सकती। ऐसे मनुष्य अवतारमें आया और परम दुर्लभ सत्यवाणी सुननेका योग मिला, यदि इस समय स्वभावकी रुचिसे यह बात नहीं सुने—समझे तो फिर कब सुनेगा ? अनंतकालमें ऐसी बात सुननेको मिलना दुर्लभ है।

● साधक जीवकी जागृति

अहो ! अनंत आकाशको लक्ष्यमें लेनेवाले—ऐसे ज्ञानको भी जो जीव 'अचेतन' मानेगा वह जीव राग-द्वेषको कैसे अपना मानेगा ? और उससे धर्म होना कैसे मानेगा ? परका कर्ता अपनेको कैसे मानेगा ? यह जीव तो अपनी ज्ञानपर्यायका भी आश्रय छोड़कर अपने परिपूर्ण स्वभावकी ओर उन्मुख होकर वहाँ लीन होगा। अहो, ऐसे भगवानकी ओर उन्मुख होकर वहाँ लीन होगा। अहो, ऐसे भगवान चैतन्यस्वभावकी स्वीकृतिमें कितना पुरुषार्थ है ! अपने मति-

अबद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावोंसे शुद्ध आत्मा ऐसा है जो पात्रतासे ग्रहण करनेवाला शिष्य अन्तरंगसे प्रफुल्लित होकर उसके अनुभवके लिए प्रयत्न करता है। —पूज्य गुरुदेवश्री

श्रुतज्ञानको स्वभावमें एक करके स्वभावके आश्रयसे मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ—ऐसा जिसने स्वीकार किया है उसकी ज्ञानचेतना जागृत हुई है, वह आत्मा स्वयं जागृत हुआ है, साधक हुआ है; और अब अल्पकालमें केवलज्ञान प्राप्त करनेवाला है।

● आत्मकल्याणकी अपूर्व बात

यह आत्मकल्याणकी अपूर्व बात है। यह जल्दीसे समझमें न आये तो अरुचि नहीं लाना चाहिए, परन्तु विशेष अभ्यास करना चाहिए। 'यह मेरे आत्माकी अपूर्व बात है, इसे समझनेसे ही कल्याण है'—इस प्रकार अंतरमें उसकी महिमा लाकर रुचिपूर्वक श्रवण—मनन करना चाहिए। समस्त आत्माओंमें यह समझनेकी शक्ति है। मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं वृद्ध हूँ, मैं बालक हूँ—ऐसी शरीरबुद्धि छोड़कर अंतरंगमें ऐसा लक्ष करना चाहिए कि मैं आत्मा हूँ, शरीरसे भिन्न ज्ञानस्वरूप हूँ, प्रत्येक आत्मा भगवान है—ज्ञानस्वरूपी है, उसमें परिपूर्णतया समझनेकी शक्ति भरी हुई है, इसलिए 'मेरी समझमें नहीं आता'—ऐसे शल्यको निकालकर 'मुझे सब समझमें आता है—ऐसी मेरी शक्ति है'—ऐसा विश्वास करके समझनेका प्रयत्न करना चाहिए ! जो रुचिपूर्वक प्रयत्न करे उसकी समझमें न आये—ऐसा हो ही नहीं सकता। इसमें बुद्धिके विकासकी अधिक आवश्यकता नहीं है, परन्तु रुचिकी आवश्यकता है।

● स्वाश्रयी मेढकको धर्म और पराश्रयी द्रव्यलिंगीको अधर्म

ज्ञान तो आत्माका स्वभाव है और उसकी पर्याय यदि परोन्मुख होकर ही जाने तो भगवान उसे 'अचेतन' कहते हैं; क्योंकि वह ज्ञान स्वभावकी रुचिसे प्रकट नहीं हुआ है, परन्तु परकी रुचिसे रागकी मन्दता होकर प्रकट हुआ है। एक मेढकका आत्मा भी चैतन्यकी पर्यायको स्वोन्मुख करके एकाग्र करे तो उसके ज्ञानको चेतन कहा है, वह धर्मी है; उसके आत्मामें प्रतिक्षण धर्म होता है। और कोई दिगम्बर जैन द्रव्यलिंगी साधु होकर २८ मूलगुण तथा पंच महाव्रतोंका निरतिचार पालन करे, नवतत्त्वके व्यवहारकी श्रद्धा करे और ग्यारह अंग, नौ पूर्व तक पढ़ ले, जैनदर्शनमें कही हुई पूर्ण व्यवहारकी रीति करे, परन्तु अपने स्वावलंबी चैतन्यस्वभावमें लक्ष्य न करे तो उसका सारा ज्ञान और चारित्र मिथ्या है; भगवान उसके ज्ञानको अचेतन कहते हैं। वह चाहे जितना करे परन्तु उसे धर्म नहीं होता, प्रतिक्षण अधर्म होता है। इसलिए बाह्यमें

(शेष देखे पृष्ठ १५ पर)

अनादिकालीन नियम है कि एकबार यथार्थ सत्‌समागमसे प्रत्यक्ष ज्ञानीकी वाणी कानमें पड़नी चाहिए, फिर उसी भवमें अथवा दूसरे भवमें अपने आप तत्त्व-मननसे जागृत होता है ।

—पूज्य गुरुदेवश्री

पंचमकालमें हुए हमारे धर्म पितामह

धर्मपितामह भगवान आचार्य गुणभद्रस्वामी

भगवान आचार्य गुणभद्रस्वामी अनेक महान आचार्योंमेंसे एक हैं, जो स्वयं भावलिंग मुनिधर्म सह यथातथ्य द्रव्यलिंगरूप आचारसे अलंकृत ही न थे पर वैसा ही उन्होंने अकाट्य लेखनीसे लिखा भी सही कि जैसे मणियोंके मध्यमें कान्तिमान मणि विरले ही पाये जाते हैं वैसे ही आजके साधुओंमें समीचीन संयमका परिपालन करनेवाले साधु विरले ही रह गये हैं।' उसी भांति 'जैसे पलंग आदि ऊँचे स्थान पर स्थित अल्पवयस्क अज्ञानी बालक तो उसके ऊपरसे गिर जानेकी शंकासे भयभीत होता है, किन्तु तीनों लोकोंके शिखररूप उस तपके ऊपर स्थित वह विचारशील साधु अपने अधःपतनसे भयभीत नहीं होता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है'।

आपके माता-पिता-कुल आदिकी जानकारी प्राप्त हो ऐसी सामग्री आपने नहीं रखी है, फिर भी आपके साहित्यसे इतना निश्चित है कि आप अपने समयके बहुश्रुत विद्वान आचार्य भगवंत थे। आप जिनसेनाचार्य (द्वितीय) और श्री भगवान दशरथगुरुके शिष्य थे। हो सकता हैं 'दशरथगुरु' आपके विद्यागुरु हों। आपके दादागुरु धवला ग्रंथके रचयिता आचार्य गुरुवर्य वीरसेनस्वामी थे। आपके शिष्य भगवान लोकसेन आचार्य थे।

प्रतिभामूर्ति आप संस्कृत भाषाके श्रेष्ठ कवि भी थे। आप योग्य गुरुके योग्यतम शिष्य थे। आपकी रचनाओंमें सरलता व सरसताके साथ प्रसादगुण समादित है। आप उत्कृष्ट ज्ञानी व महातपस्वी तो थे पर साथ हीमें आप अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी भी थे। आपका निवासस्थान दक्षिण आरकट जिलेका 'तिरुमरुड़कुण्डम्' नगर माना जाता है। आपके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंसे ज्ञात होता है कि आप सेनसंघके आचार्य थे।

भगवान आचार्य जिनसेन (द्वितीय)की भांति आपकी अपनी साधनाभूमि कर्णाटक व महाराष्ट्रकी भूमि ही रही है क्योंकि इन्हीं स्थानोंमें आपने अपने ग्रंथोंकी रचना की है।

इतना ही नहीं अपने गुरुके ऐसे शिष्य थे कि जिन्होंने अपने गुरुकी भांति, अपने गुरुके अधूरे कार्यको पूर्ण किया। आप अपने गुरुके अतिशय भक्त थे। आपकी गुरुभक्तिका एक

> **प्रथम गुरुज्ञानके बिना अकेला शास्त्रोंको पढ़े अथवा किसीसे सुने या कल्पना करे तो तत्त्व समझमें नहीं आ सकता । इस श्रवणको शास्त्रीय भाषामें देशनालब्धि कहते हैं ।** —पूज्य गुरुदेवश्री

ही उदाहरण पर्याप्त है वह यह कि आपने अपने गुरुके महापुराण (आदिपुराणके ४२ सर्गके पश्चात्का कार्य व तत्पश्चात्का २३ तीर्थंकर व बाकी के ६३ शलाका पुरुषका जीवनचरित्ररूप उत्तरपुराण बनाते समय लिखते हैं कि, 'इस रचनामें मेरे वचन श्रोताओंको सुखादु (आनन्ददायक) प्रतीत हों तो वह गुरुओंका ही प्रभाव समझना चाहिए क्योंकि आम्र आदि फलोंमें जो सुस्वादुता देखी जाती है वह उन फलोंके उत्पादक उनके वृक्षके कारण ही है। इतना ही नहीं, 'मेरे ये वचन जिस हृदयसे निकलनेवाले है उस हृदयमें तो गुरुओंका वास निरन्तर है अत: वे उनके संस्कारसे संयुक्त–रस, भाव व अलंकारादिसे विभूषित करेंगे ही।' वे गुरु भक्त इतने हैं कि वे लिखते हैं 'जगतमें श्रेष्ठ गुरु सर्वत्र दुर्लभ है व इस पुराणरूप समुद्रको पार करनेमें मेरे आगे चल रहे हैं'।

आपकी रचनाओंसे गुरुभक्तिसह उत्कृष्ट विद्वतता व आपकी शालीनताका ही परिचय मिलता है कि जिससे ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्यकी रचना बनना आपकी असाधारण प्रतिभा व उत्कृष्ट विद्वतता बिना असंभव ही था।

आपने निम्न ग्रंथोंकी रचना की है।

(१) आदिपुराण ४३वे पर्वके चौथे पद्यसे ४७ सर्ग तक पूर्णतया।

उत्तरपुराण : भगवान जयसेनाचार्य (द्वितीय)ने महापुराण रचनाका आदिभाग 'आदिपुराण'के नामसे प्रसिद्ध हुआ, तो यह उत्तरभाग 'उत्तर पुराण'के नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

(२) आत्मानुशासन (३) जिनदत्त चरित काव्य

आपका समय विद्वानोंने ई.स. ८७०–९१० निर्णित किया है।

❀

(पृष्ठ १३ का शेष भाग)

छोटे-बड़े शरीरके साथ या अंतरंग ज्ञानके विकासके साथ धर्मका संबंध नहीं है; परन्तु अपने ज्ञाननें स्वाश्रय करे या पराश्रय करे तो मेढकका आत्मा भी धर्म प्राप्त करता है; और स्वाश्रय न करे तो द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु भी धर्म प्राप्त नहीं करता। *(क्रमशः)*

❋

भीतर स्वभावका लक्ष्य करने पर अनन्त सुलटा पुरुषार्थ और भवका अभाव होता है, ऐसी प्रथम श्रद्धाकी बात भवकी शंकावाला व्यक्ति नहीं सुन सकता, वह इन्कार करता है ।

—पूज्य गुरुदेवश्री

(टाईटल ३ का शेष भाग)

कि—रोग मिटना हो तो मिटे, जिस समय शरीरकी जो क्रिया होना हो वह हो। भाई ! वह तो जड़की पर्यायका काल है, उसे बदलने का व्यर्थ प्रयत्न न कर, उसे मिटानेकी प्रवृत्तिमें न पड़। जो अंतरंगसे निवृत्तिका प्रेमी है उसे वह बाह्यप्रवृत्ति नहीं रुचती।

सनत्कुमार चक्रवर्ती महा पुण्यशाली थे। क्या उनके शरीरकी सुन्दरता ! प्रत्येक अवयव मानों विधिने बड़ी कुशलतासे बनाया हो। रूप–लावण्य तो देवोंको भी चकित कर देता था ! एकबार दो देवोंने आकर देखा और कहा—अति सुन्दर है आपका शरीर ! चक्रवर्तीके मनमें अभिमान आ गया। वे बोले : अभी तो हम स्नान किये बिना, शृंगार किये बिना बैठे हैं; जब आभूषणादि पहनकर राजदरबारमें बैठूँ तब आना मेरा रूप देखने ! देव राजदरबारमें देखने आये और मुँह बिगाड़ने लगे। चक्रवर्तीको मनमें लगा कि यह क्या ? क्या होगया इन्हें ? पूछा तो बोले—शरीर बिगड़ गया है आपका ! थूकिये तो मालूम होगा कि उसमें इल्लियाँ पड़ गई हैं। शरीरकी ऐसी विचित्र स्थिति देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया और दीक्षा ले ली। सातसौ वर्ष तक गलित-कुष्ठकी व्याधि रही; परन्तु उन चक्रवर्तीको मुनिदशामें आनन्द, आनन्द, अपार अतीन्द्रिय आनन्द है ! उनके पास ऐसी ऋद्धि थी कि अपना थूंक लगाने मात्रसे समस्त व्याधि मिट जाय, परन्तु वह रोग मिटे या न मिटे उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा एवं आनन्दका वेदक हूँ।—ऐसा मेरा जो निवृत्तिमय स्वरूप उसे मैं छोड़ूँगा नहीं। निवृत्तिमय जीवनमें शरीरादिके हेतु बाह्य प्रवृत्ति नहीं रुचती।

'बाहरका कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं।'

निवृत्तिके प्रेमीको बाह्य कार्य बोझरूप लगते हैं। प्रातःकालसे लेकर सारे दिन बाहरका यह करना है और वह करना है, इतने कार्य पूरे करना हैं। बच्चे छोटे हों उन्हें सँभालना, उनका पालन-पोषण करना, फिर पढ़ाना–लिखाना, विवाह करना, यह सब दुनिया की जंजाल है प्रभु ! निवृत्तिमय जीवनवालेको यह प्रवृत्ति बिलकुल अच्छी नहीं लगती। तू अंतरमें निवृत्तिमय तत्त्व है; उसके सिवा तेरी अन्य कोई जाति नहीं है।

*

अपनेको भूलकर दूसरेको अपना मानकर, उसमें राग करके अटक रहा है और उसके फलस्वरूप नरक, निगोद, देव, मनुष्य इत्यादि चोराशीके अवतार धारण कर परिभ्रमण कर रहा है। वह परिभ्रमणरूप संसार-अवस्था व्यवहारसे सत्य है। —पूज्य गुरुदेवश्री

किशोर-विभाग

[अब तक इस स्तंभ अन्तर्गत द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप लिया था। अब इसमें विविध शास्त्रोंके आधारसे सात-तत्त्व, नौ पदार्थका स्वरूप प्रश्नोत्तररूपसे लिया जाता है।]

प्रश्न : गतांकमें आपने विविध जीवोंको बताकर जीवकी वैविध्यता बताई और सामान्यसे जीवका लक्षण बताया। परन्तु जीवको किस भांतिसे जाने तो सम्यग्दर्शन होता है।

उत्तर : जीव ज्ञान-दर्शन अर्थात् जानने-देखनेवाले स्वभावरूप है—वैसा मैं भी जानन-देखन स्वरूप हूँ। उसे जानने-देखने जितनी ज्ञाति मात्र न मानते हुए सिद्ध भगवानमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद ज्ञान-दर्शनादि प्रकट हैं उतने ही मुझमें वर्तमानमें अभी शक्तिरूपसे हैं, पर वह शक्ति अपने वर्तमानमें स्पष्टरूपसे जानी जा सके ऐसी है, ऐसा ज्ञान-दर्शनादि निज स्वभावको ज्ञाति और शक्ति संयुक्तरूप जानने पर जो दृढ़ श्रद्धा होती है वह सम्यग्दर्शन है।

अशरीर अरु अविनाशी है, निर्मल, अतीन्द्रिय, शुद्ध है,
ज्यों लोक-अग्रे सिद्ध त्यों जान सौ संसारीको। (नि.सा. ४८१)

दृष्टांतके तौर पर :—जैसे खींचे हुए तीरमें मारनेका जो सामर्थ्य तथा जमीन पर पड़े हुए तीरमें मारनेके सामर्थ्यमें जो फ़रक है वह स्पष्ट प्रतिभास होता है वैसे ज्ञानी निज आत्मामें, 'खिंचे हुए तीरमें मारनेकी शक्तिरूप' शुद्धता—सिद्ध जैसे अनंत गुणात्मक सामर्थ्य अनुभवते हैं तब अज्ञानी जमीन पर पड़े तीरकी मारनेके सामर्थ्य अनुसार अनुभवते हैं। ज्ञानी जिस तरह आत्माकी शक्तिको महसूस करते हैं वैसे अपने आत्मस्वभावको अनुभवने पर सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न :—क्या गतांकमें इन्द्रियोंके भेदसे जीवों के प्रकार बताये— उसमें एकेन्द्रिय जीव आदि भी वर्तमानमें ही सिद्ध भगवान जैसी वीतरागताका सामर्थ्य रखते हैं।

उत्तर :—सभी जीवको सिद्ध भगवान समान वर्तमानमें शक्तिमान है, ऐसे ज्ञानपूर्वक ही गतांकमें बताये जीवोंकी वैविध्यताको जानना सार्थक है; नहीं तो भेदानुभेद में मोहित होकर रागी-द्वेषी होनेके अलावा अन्य फल नहीं है।

(शेष देखे पृष्ठ २ पर)

यहाँ यह निश्चय कराना है कि प्रत्येक आत्मा अपने रूपसे स्वतंत्र है और अपने गुण-पर्यायरूपसे ही है, पररूपसे नहीं है । —पूज्य गुरुदेवश्री

ऋषभ स्तोत्र अपरनाम भक्तामर स्तोत्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

[भगवान मानतुंगस्वामी द्वारा ई.स. ६७७के करीब भगवान आदिनाथको लक्ष्य करके उनके प्रति समर्पणभावमय भक्तिमें एक अद्भुत स्तोत्र बन गया है। उसमें ४८ कारिकाएँ है। यद्यपि यह भगवान आदिनाथकी स्तुति होने पर भी 'भक्तामर' शब्दसे यह स्तोत्र शुरु होता होनेसे यह स्तोत्र 'भक्तामर स्तोत्र' नामसे प्रसिद्ध है। इस पर पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रवचन किए है। वह यहाँ दिये जा रहे है।]

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।७।।

अर्थ : हे नाथ ! जैसे सूर्यके किरणोंसे तीन जगतमें फँसे हुए भ्रमर समान काला अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे आपकी स्तुति करनेसे जन्मोजन्मके इकट्ठे हुए जीवोंके पाप क्षणमें नष्ट हो जाते है।

प्रश्न : क्या रोजाना भक्तामर स्तोत्र पढ़नेवाला धर्मी कहलाएगा ?

उत्तर : नहीं, परन्तु जिन्होंने सर्वज्ञदशा प्रकट की, उनका यथार्थ भरोसा आया, ऐसा वीतराग दृष्टि और शान्तिरूप परिणमनेवाला धर्मी बनता है। अतः भक्तामर स्तोत्र द्वारा जिन्होंने सर्वज्ञदशा प्रकट की, उनका यथार्थ भरोसा करता है वह धर्मी बन सकता है।

प्रश्न : केवलज्ञान अनुसार सबकी पर्याय क्रमबद्ध होती है—यदि ऐसा है तो धर्मका पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

उत्तर : (स्वयंका ज्ञायक स्वभावको वर्तमानमें ही है, ऐसे स्वीकारनेवालेकी) केवलज्ञानका स्वीकार आता है, उसे ही निःशंक ज्ञायकत्वकी रुचि और आदर होता है वह ही पुरुषार्थ है। उसे ही सर्वज्ञने केवलज्ञानमें जो जो जैसा देखा, उस स्वकाल (स्व अवसर)में उसका क्रमबद्ध होता है। ऐसी श्रद्धा है उसे भ्रमणका भाव नहीं रहता।

केवलज्ञानीकी सत्ताका स्वीकार कहो, क्रमबद्ध पर्यायका स्वीकार कहो या स्वयंके

ज्ञाता-दृष्टा स्वभावका स्वीकार कहो या परके अकर्ताका स्वीकार कहो सब एक ही है; क्योंकि मोक्षमार्गके पांचों समवाय एक समयमें हैं व ऐसे स्वीकारनेवालेकी दृष्टि निर्मल ज्ञानस्वभावमें जाती है, तब ही बंधभाव छूट जाता है, मोक्ष-मार्ग खुल जाता है। इस भांति निसंदेह ज्ञानभावमें अनंत पुरुषार्थ आता है।

प्रश्न : आचार्यदेव भगवानकी स्तुति कैसे कर रहे है ?

उत्तर : प्रभु ! मैं देह-मन-वाणी या पुण्य-पापकी स्तुति नहीं करके अनंत गुणसंपन्न ऐसे आपके ही गाने गाता हूँ—अर्थात् स्तुति करता हूँ।

आपने एक समयमें तीनलोक-कालको जान लिया है ऐसे भवरहित भगवानके विश्वास द्वारा बहुमान करता हुआ बहुत विनयसे कहता है कि हे नाथ ! आपकी भक्तिसे प्रवाहरूप अनंत भवके बंधे हुए कर्मके निमित्तसे पापरूप संयोग हो परन्तु जहाँ पूर्ण ज्ञान स्वभावका ज्ञान होता है, वहाँ पापनाशको प्राप्त हो जाते हैं। इस भांति आचार्यदेव भगवानकी भाव महिमारूप स्तुति कर रहे हैं।

कहेनेका तात्पर्य यह है कि (१) ऐसी महिमा करना कोई दोष नहीं है, परन्तु स्वभावके ज्ञान होनेमें निमित्त कारण होता है। (२) धर्मी जीवको वीतरागदेवकी भक्तिके ही विकल्प उठते हैं व उन्हें ही पाप नष्टको प्राप्त होते हैं।

प्रश्न : यहाँ आचार्यदेव दृष्टांतसे क्या बताना चाहते हैं ?

उत्तर : जैसे सूर्यकी किरणोंसे रात्रिका घोर अंधकार भी नाश हो जाता है, वैसे ही प्रभु ! तेरी भक्तिसे अनंत भवके पापका नाश हुए बिना नहीं रहता। इस भांति आचार्यदेव इस दृष्टांतसे प्रभुकी वीतरागताकी महिमा ही देखते हैं।

जैसे पद्मनंदी आचार्यदेव ऋषभस्तोत्रमें जहाँ-तहाँ वीतरागताको ही देखते हुए कहते हैं कि हे नाथ ! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जब आप मुनिदशामें ध्यानमें खड़े थे, तब शुक्लध्यानरूपी प्रचंड अग्निके तापसे आपके कर्मके बादल अखंड थे उन्हें तोड़ दिए थे; वे बादल आज भी खंड-खंड टूकडे होकर बाहर फिर रहे हैं।

प्रश्न : क्या ऐसी महिमा करनेसे कर्म खिर जाते हैं ?

उत्तर : नहीं, उक्त प्रकारसे आत्माके अनुभव ज्ञान सह अन्तरमें एकता वह निश्चय भक्ति है, व भगवानकी महिमारूप भक्ति वह व्यवहारसे भक्ति कही जाती है। यहाँ ऐसी निश्चय-व्यवहाररूप भक्तिकी बात है।

सूर्यके प्रकाशसे कर्म नहीं खिसकते, पर आपकी भक्तिसे कर्म जरूर क्षणमें नष्ट हो जाते है अर्थात् 'मैं चिदानंदघन आत्मा हूँ—ऐसे आत्माका जहाँ सत्कार आता है, वहाँ कर्म नाश हो जाते हैं।

वैसे तो आचार्य भगवंतको भक्तिका राग होनेसे वे स्वर्गमें जाएँगे—उस बातको यहाँ गौण करके स्वयंकी दृष्टिके ज़ोरमें कहते हैं कि हमारे कर्म नाश होते ही हैं।

प्रश्न : आचार्यको शुद्ध रत्नत्रय प्रकट हो गया होने पर भी उन्हें भक्तिका राग क्यों आ जाता है ?

उत्तर : आचार्यको अखंड ज्ञानस्वभावका श्रद्धा-ज्ञान व मुनि योग्य वीतरागता एक समय भी छूटती नहीं है और रागका कीर्तन यथार्थतया नहीं आता। श्रद्धामें ऐसी दृढ़ता होने पर भी जब तक उन्हें पूर्ण वीतरागता नहीं हो जाती, तब तक पुरुषार्थकी कमजोरीसे भक्ति आदिका राग आये बिना नहीं रहता।

आचार्यदेव को भवके अभाव स्वभाव अन्तरमें रुचा है अतः कर्मके नाश होंगे ही व स्वभाव व विभाव का भेदज्ञान वर्तता होनेसे क्षणभरमें बंधन नाश होंगे। परंतु पंचमकाल होनेसे पुरुषार्थकी कमजोरीसे लंबी आयुष्य हो ऐसा स्वर्गमें जाने योग्य राग आ जाता है फिर भी वहाँ भी वे रागसे अलिप्त अपने स्वभावकी महिमाकी मौजमें रहते हैं।

'सत्तास्वरूप'में बताया है कि जैसे किसी स्त्रीका पति लम्बे अरसेसे परदेश गया हो वह अन्य पुरुषसे घरका व्यवहार करवाती है तब प्रेमसे उसकी महिमा आदि भक्तिभाव करती थी, परन्तु जब अपना मूल पति आ जाए फिर भी परपुरुषसे ही अधिक महिमा व भक्तिभाव व सेवा करे तो वह कुलटा स्त्री कहलाती है। उसी भांति अज्ञानी जीव पूर्वमें कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र आदिकी महिमा, भक्ति-सेवा करता था अर्थात् मन-वचन-कायासे धनादि खर्चता व क्रोधादिभाव करता था पर उसके बदले उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले और उनके प्रति अधिक प्रीतिरूप शुभराग न आए व शक्ति अनुसार धनादि खर्च कर भक्ति-पूजा-प्रभावनामें रस न ले वह कुलटा स्त्री समान पक्का मिथ्यादृष्टि है।

इस भांति आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ ! मुझे आपके अलावा किसी अन्यके प्रति तनिक भी आदर नहीं है परन्तु आप ही मेरे हितोपदेशक जानकर आपकी भक्ति करता हूँ अतः मेरे अल्पकालमें कर्म नाशको प्राप्त होंगे।

प्रश्न : आप तो क्रमबद्ध को माननेवाले हैं फिर अल्पकालमें मोक्षकी बात कहाँ लाये ?

उत्तर : भाई ! क्रमबद्धका निर्णय तो निज सर्वज्ञ स्वभावके निर्णय—आदर और रुचिकी मुख्यतामें होता होनेसे व जिसे ज्ञातास्वभावकी दृष्टि है, उन्हें अल्पकालमें मुक्ति होती है।

भाई ! आचार्य कहते हैं कि हे नाथ ! आप तो तीनलोक तीनकालको जाननेवाले हैं, परन्तु किसीका कुछ करते नहीं हो—उस परसे मैं निर्णय करता हूँ कि 'मैं तीनलोक तीनकालका जाननहार हूँ पर किसीका कुछ करूँ, ऐसा नहीं—ऐसा अकर्ता हूँ व न मैं अल्पज्ञ रहूँ ऐसा हूँ। राग आया है पर वह मेरा कर्तव्य नहीं है व पूर्ण स्वभावके घोलनमें पुण्य-पाप दोनों टलते हैं। इस भांति केवलज्ञान व्यक्त होनेका स्वकाल अल्पकालके क्रममें आता है।

यहाँ अकेली एकांत रागरूप भक्ति नहीं है, पर निश्चय भक्ति सहित व्यवहार भक्ति है। परन्तु अज्ञानी रागरूप भक्तिसे लाभ मानता है उसे भगवानके पूर्ण व्यक्त स्वभावका आदर नहीं पर रागका आदर है। अतः जिसे अपने पूर्ण स्वभावका भी आदर नहीं है, उसके स्वकालमें संसारदशाका ही क्रम आता है। *(क्रमशः)*❑

अमेरिकामें दशलक्षण पर्व सानंद संपन्न एवं

ई.स. २०१२ के दौरान पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी १२३वीं जन्मजयंती तथा त्रिदिवसीय धार्मिक शिविरका भव्य आयोजन

अमेरिका स्थित टेम्पा(**Florida**)के जिनमंदिरमें दसलक्षण पर्व महोत्सव अत्यंत भव्यरूपसे संपन्न हुआ। वांकानेर निवासी जैन विद्वान श्री सुभाषभाई शेठ अमेरिकाकी संस्थाके निमंत्रणका स्वीकार करके यहाँ पधारे थे। दस दिनका भरचक कार्यक्रम हुआ था। उसमें दो दिन धार्मिक शिक्षण शिविरका कार्यक्रम भी रखा गया था। इस पर्वके दौरान भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवका विशाल चित्रपट (4′ x 3′) भी जिनमंदिरके भव्य हॉलमें सेंकडों मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें बिराजमान किया गया था। इसके अलावा जिनमंदिरमें पुस्तकालयकी योजनाकी भी घोषणा कि गई थी। जैनधर्मके शास्त्र तथा कोम्प्युटरादिसे जैन साहित्य उपलब्ध हो सके ऐसा आयोजन किया गया है। यह सब कार्य तथा चित्रपटके लिए डॉ. दिलिप महेता तथा डॉ. सिद्धार्थ शाहकी ओरसे उदारहृदयी दानराशिकी घोषणा हुई थी। इस कार्यमें जैन सेन्टरके प्रेसिडेन्ट डॉ. राकेश शाह द्वारा भी अच्छा मार्गदर्शन मिला था।

ई.स. 2012के दौरान पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी 123वीं जन्मजयंती तथा त्रिदिवसीय आध्यात्मिक शिविरका टेम्पा-फ्लोरिडामें आयोजन करनेकी घोषणा की गई थी। इस महोत्सवके सौजन्यका सौभाग्य डॉ. राकेश शाह एवं डॉ. सिद्धार्थ शाहको प्राप्त हुआ है । इस कार्यक्रमका भव्यरूपसे आयोजन हुआ है। अतः सबको इस कार्यक्रममें शामिल होनेके लिए सहृदय निमंत्रण है।

For further information, please contact :
Hasmukh M. Shah, President : Jain Swadhyay Mandir Songadh (USA)
Email : hasmukh33@yahoo.com

जो दूर नहीं होता वह स्वभाव कहलाता है, इसलिए विकार और संयोगकी तुझमें नास्ति है, इसलिए उससे भिन्न आत्माकी अनुभूति हो सकती है । —पूज्य गुरुदेवश्री

बाल-विभाग

देवकीके आठ पुत्रोंमेंसे छ पुत्र

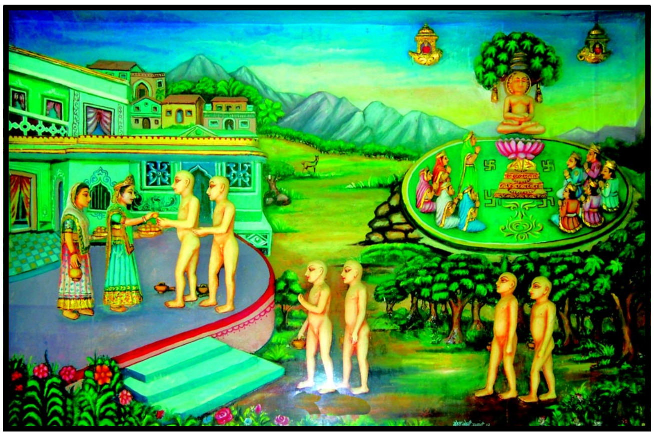

[गतांकोमें : कंस गर्भसेही बहुत उग्र होनेसे उसके माता-पिता राजा उग्रसेन व रानी पद्मावतीने उसे मंजूषामें बंदकर उसके साथ माता-पिताके नामकी मुद्रिका भी रख दी। वह मंजूषा एक शराब बेचनेवालीको यमुना नदीमेंसे मिली, उसने बच्चा देख दयासे 'कांस'की मंजूषाके कारण 'कंस' नाम रखा व पाल पोष कर बड़ा किया पर वचपनसे ही वह बहुत उद्दंड, उग्र स्वभावी व निर्दयी होनेसे लोगोंके उलाहनोसे उसने उसे घरसे निकाल दिया। धनुर्विद्याकी चाहक होनेसे धनुर्विद्यामें प्रवीण वसुदेवको गुरु बना लिया एक बार वसुदेव राजगृहीमें अपने कंसादि शिष्यों सह गया। वहाँ जरासंघकी घोषणा पढ़ी। जिसमें उद्दंड राजा सिंहरथको जीवंत पकड़कर जो जरासंघको सोंपेगा, उसे राज्यांश सह उसकी बेटीको देगा। वसुदेवने यह घोषणाकी ध्वजा स्वीकार कर सिंहरथको पकड़ लाया और जरासंघको सौंपा। राजाने घोषणानुसार इनाम वसुदेवको देने लगे तब उसने कंसकी भी काफी मदद होनेसे वह इनाम कंसको दिलवाया। जिसमें उसे मथुराका राज्य व जरासंघकी बेटी जीवद्यशा मिली। जीवद्यशा सह कंस मथुरामें राज्य करने लगा। कंस वसुदेवको अपना उपकारी व गुरु मानता होनेसे गुरु-दक्षिणा देना चाहता होनेसे उसने अपनी बहनका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया। वसुदेव व देवकी मथुरामें ही रहने लगे। एकदिन कंसका बड़ा भाई अतिमुक्तक मुनिराज आहार हेतु कंसके यहाँ पधारे। वहाँ जीवद्यशाने मुनिराजके प्रति क्रीड़ाभावका प्रदर्शन किया। जिसके फलस्वरूप मुनिराजने उसे कहा कि तू हँस रही है, पर तेरा रोना निश्चित् है क्योंकि इसी देवकीके पुत्रसे तेरे पति व पिताकी मृत्यु निश्चित् है । यह बात वह अपने पति कंसको करती है। जिससे कंस डर जाता है व वसुदेवने पूर्वमें उसे जो वचन दिया था वह मांग कर उसमें देवकीकी प्रसुति अपने ही घरमें करवानेकी मांग की। वसुदेव मुनि भगवंतकी बातसे अनजान होनेसे वचन दे दिया। वसुदेव व देवकी दोनों मुनिराज हेतु आम्रवनमें गये और पूछा कि यह दुष्ट कंस अपने पिताका ही क्यों घात करता है व मेरा पुत्र कंस व जरासंघको क्यों मारेगा।-ऐसा क्या पूर्वभवका कारण है। इस पर अतिमुक्तक मुनिराज पूर्व भवका वृत्तांत कहते हैं। मथुरा नगरीमें वशिष्ठ तापस यमुना नदी पर पंचाग्नि तप करता था उसकी अज्ञानता आचार्य वीरभद्र सिद्ध करते है जिससे वशिष्ठ जिनदीक्षा धारण कर घोर तप करता है। वशिष्ठ मुनि विहार कर मथुरा आए, राजा उग्रसेनने आहार देने पर मनाई फरमाई पर प्रमादवश वह आहार देना भूल जाता है। यह बात मुनिको ज्ञात होते वह उस राजाको मारनेका निदान बांधनेसे दूसरे भवमें कंस होकर उसी राजाके यहाँ जन्मता है। देवकीका पुत्र उस कंसको मारेगा व राजा उग्रसेनको बचायेगा। अब आगे.....]

कर्मके निमित्तसे आत्मामें विकारी अवस्था होती है, वह क्षणिक विकारका नाशक त्रैकालिक स्वभाव प्रत्येक आत्मामें है। —पूज्य गुरुदेवश्री

वह देवकीका सातवाँ पुत्र शंख, चक्र, गदा तथा खड्‍गको धारण करनेवाला होगा और वह कंस आदि शत्रुओंको मारकर समस्त पृथ्वीका पालन करेगा। शेष छहों पुत्र चरमशरीरी होंगे उसकी मृत्यु नहीं होगी अतः चिन्तारूपी व्याधिका त्याग करो क्योंकि ये छह जीव युगलिया-रूपसे देवकीके गर्भमें क्रम क्रमसे उत्पन्न होंगे और वे पराक्रमके महासागर-अत्यन्त पराक्रमी होंगे। ईन्द्रका आज्ञाकारी हारी अपरनाम नैगम नामका देव उन पुत्रोंको उत्पन्न होते ही धायके जीव अलकाके पास पहुँचा देगा; वहीं वे यौवनको प्राप्त करेंगे। उन पुत्रोंमें बड़ा पुत्र नृपदत्त, दूसरा देवपाल, तीसरा अनीकदत्त, चोथा अनीकपाल, पाँचवाँ शत्रुघ्न और छठा जितशत्रु नामसे प्रसिद्ध होगा। तुम्हारे ये सभी पुत्र रूपसे अत्यन्त सदृश होंगे अर्थात् समानरूपके धारक होंगे। ये सभी कुमार हरिवंशके चंद्रमा, तीन जगतके गुरु श्री नेमिनाथ भगवानकी शिष्यताको प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे। निर्नामकका जीव देवकीके गर्भमें आकर सातवाँ पुत्र होगा अत्यन्त वीर होगा तथा इस भरतक्षेत्रमें नौवाँ नारायण होगा।

मृत्युकी शंकासे शंकित कंस इनकी निरन्तर सेवा सुश्रुषा करने लगा। तत्पश्चात् प्रसुतिकाल आने पर जब देवकीके युगल पुत्र उत्पन्न हुए तब इन्द्रकी आज्ञासे सुनैगम नामका देव उन उत्तम युगल पुत्रोंको उठाकर सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलका (पूर्वभवकी रेवती धायका जीव)के यहाँ पहुँचा आया। उसी समय अलकाके भी युगलिया पुत्र हुए थे परन्तु भाग्यवश वे उत्पन होते ही मर गये थे। नैगम देव उन दोनों मृत पुत्रोंको उठाकर देवकीके प्रसुति गृहमें रख आया और उसके बाद स्वर्गलोकको चला गया। शंकासे युक्त कंसने बहनके प्रसूतिका गृहमें प्रवेश कर उन दोनों मृतक पुत्रोंको देखा और भीलके समान रौद्र परिणामी हो पैर पकड़कर शिलातल पर पछाड़ दिया। तदन्तर देवकीने क्रम क्रमसे दो युगल और उत्पन्न किये सो देवने उन्हें भी पुत्रोंकी इच्छा रखनेवाली अलका शेठानीके पास भेज दिया। इधर पापी कंसने भी उन निष्प्राण पुत्रोंको पहलेके समान ही शिला पर पछाड़ दिया। तदन्तर उनका पुण्य ही उनकी रक्षा कर रहा था।

देवकीके सातों पुत्रोंके पूर्वभव

काफ़ी समय पूर्व राजा शूरसेन मथुरापुरीकी रक्षा करते थे तब वहाँ बारह करोड़ मुद्राओंका अधिपति भानु नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था। उन दोनोंको सुभानु,

यह समयसार ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट है। एक-एक गाथामें त्रिकाल सर्वज्ञ-हृदयके रहस्य भरे हुए है। इसे जो समझता है वह निहाल हो जाता है। —पूज्य गुरुदेवश्री

भानुकीर्ति, भानुषेण, शूर, सूरदेव, शूरदत्त और शूरसेन ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये सातों भाई अत्यन्त सुन्दर तथा स्वभावसे ही एक दूसरेके अनुगामी थे। उन सातों पुत्रोंकी क्रमसे कालिन्दी, तिलका, कान्ता, श्रीकान्ता, सुन्दरी, द्युति और चन्द्रकान्ता ये सात स्त्रीयाँ थीं जो उच्च कुलोंकी कन्याएँ थीं। भानुसेठने अभयनन्दी गुरुके समीप दीक्षा ली और उसकी स्त्री यमुनाने जिनदत्ता आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। सातों भाईयोंने जुआ और वेश्या व्यसनमें फँसकर पिताका सारा धन नष्ट कर दिया। उनके पास जब कुछ नहीं रहा तब वे चोरी करनेके लिए उज्जयिनी नगरी गये। उज्जयिनीके बाहर महाकाल नामक एक वन है। वहाँ सन्ततिकी रक्षा के लिए छोटेभाई शूरसेनको रखकर शेष छह भाई निःशंक हो रात्रिके समय नगरीमें प्रविष्ट हुए। बादमें उन्होंने चोरीसे प्राप्त हुए धनके बराबर हिस्से कर शूरसेनसे कहा कि अपना हिस्सा उठा लो। शूरसेनने हिस्सा लेनेके प्रति अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा कि लोग स्त्रियोंके पीछे ही नाना प्रकारके अनर्थ करते हैं और स्त्रीयाँ वज्रमुष्टिके समान होती है। यह वृत्तान्त सुनकर बड़ेभाई सुभानुको छोड़कर छोटे छह भाईयोंने विरक्त होकर वरधर्म गुरुके समीप दीक्षा धारण की। बड़ा भाई धन लेकर स्त्रीओंके समीप गया और सारा वृत्तांत सुनाया तब उन्होंने भी विरक्त हो दीक्षा ले ली। अन्तमें बड़े भाई सुभानुकी बुद्धि ठिकाने आ गयी इसलिए उसने भी वरधर्म गुरुके समीप दीक्षा ली।

घोर तपको धारण करनेवाले सातों मुनिराज आयुके अन्तमें समाधिमरण करके सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाले त्रायस्त्रिंश जातिके देव हुए। धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें जो विजयार्ध पर्वत है उसकी दक्षिण श्रेणीमें नित्यालोक नामका नगर है। उसमें राजा चित्रशूल और रानीका नाम मनोहरी था। बड़े भाई सुभानुका जीव उन्हीं दोनोंके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ और शेष छह भाईयोंने क्रम-क्रमसे युगलोंके रूपमें गरुडकान्त, सेनकान्त, गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल और हिमचूल नामके छह पुत्र हुए। सातों भाईओंने धनश्रीके स्वयंवरमें क्षत्रियवधको देखकर इन्द्रियविषयोंकी निन्दा करके भूतानन्दमुनिराजके समीप दीक्षित हो गये। सातों मुनिराजने समाधिमरण करके माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागरकी आयुके धारक सामानिक जातिके देव हुए और वहाँकी विभूति चिरकाल तक भोगते रहे।

तदन्तर वहाँसे च्युत होकर बड़ा भाई सुभानुका जीव इसी भरतक्षेत्रके हस्तिनापुर नगरमें सेठकी बन्धुमती स्त्रीसे शंख नामका पुत्र हुआ। शेष छह भाईयोंके जीव इसी नगरके राजा गंगदेवकी नन्दयशा रानीसे तीन युगलक रूपमें गंग, गंगदत्त, गंगरक्षित, नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण

नामके छह पुत्र हुए। रानीनन्दयशाके गर्भमें जब सातवाँ पुत्र आया तब उसके अत्यन्त दुर्भाग्यका उदय आया। उससे दुखी होकर उसने उत्पन्न पुत्रको छोड़ दिया, निदान रेवती नामकी धायने पालन-पोषण कर बड़ा किया। उसका नाम निर्नामक था। यह निर्नामक और श्रेष्ठीपुत्र शंखको बड़ा प्रिय था। शंखका जीव आगे चलकर हलको धारण करनेवाला बलदेव होता है|

राजा गंगदेवने संसारसे भयभीत होकर अपने देवनन्द नामक पुत्रको राज्यलक्ष्मी सौंपकर दो सौ राजाओंके साथ उन्हीं मुनिके समीप उसने दीक्षा धारण कर ली। समस्त राजपुत्रों और श्रेष्ठीपुत्र शंखने भी दीक्षा ले ली तथा संसारचक्रसे निवृत्त होनेके लिए निर्मल तप करने लगे। रानीनन्दयशा, रेवती धाय और बन्धुमती सेठानीके साथ सुव्रता नामक आर्यिकाके समीप उत्तम व्रतोंके समूहसे सुशोभित दीक्षा धारण कर ली। निर्नामकने मुनि होकर सिंहनिष्क्रिड़ित नामक कठिन तप किया और यह निदान बांध लिया के मैं जन्मान्तरमें नारायण होऊँ। रेवती धाय मनुष्यपर्याय प्राप्त कर भद्रिलसा नगरमें सुदृष्टि नामक सेठकी अलका नामकी स्त्री हुई है।

जिनका चरित्र कहा उनमेंसे छ पुत्र जो युगलिक रूपमें राजपुत्र हुए थे वे सभी देवकीके छ युगलकरूपमें पुत्र होते हैं और वे ही देव द्वारा अलका शेठानीके यहाँ छोड़ दिए जाते हैं। जो अलका सेठानीके लिए अत्यन्त प्रिय थे, जिनके नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुध्न और जितशत्रु ये नाम पहले कहे जा चुके थे, जिनका सुखपूर्वक लालन-पालन हो रहा था, तथा जो अत्यन्त रूपवान थे ऐसे वसुदेवके छहों पुत्र धीरे धीरे वृद्धिको प्राप्त होने लगे।

एक दिन देवकीने रात्रिके अंतिम प्रहरमें निम्नलिखित सात स्वप्न देखे। पहले स्वप्नमें अन्धकारको नष्ट करनेवाला उगता हुआ सूर्य देखा। दूसरे स्वप्नमें उसीके साथ अत्यन्त पूर्ण चन्द्रमा देखा। तीसरे स्वप्नमें दिग्गज जिसका अभिषेक कर रहे थे ऐसी लक्ष्मी देखी। चौथे स्वप्नमें आकाशतलसे नीचा उतरता हुआ विमान देखा। पाँचवें स्वप्नमें बड़ी-बड़ी ज्वालाओंसे युक्त अग्नि देखी। छठ्ठे स्वप्नमें ऊँचे आकाशमें रत्नोंकी किरणोंसे युक्त देवोंकी ध्वजा देखी और सातवें स्वप्नमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ एक सिंह देखा। अपूर्व एवं उत्तम स्वप्न देखनेसे जिसे विस्मय हो रहा था, जिसको रोमांच हो रहा था ऐसी देवकीने जाकर अपने पतिसे सब स्वप्न कहे और विद्वान पति—राजा वसुदेवने इस प्रकार उनका फल कहा। ''हे प्रिये ! तुम्हारे शीघ्र ही एक ऐसा पुत्र होगा जो समस्त पृथ्वीका स्वामी होगा। *(क्रमश:)*❑

ગુરુદેવશ્રીનાં વચનામૃત

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट प्रेरित
श्री कुन्दकुन्द-कहान परिवार युवकमंडल आयोजित

वचनामृत वर्ष

બહેનશ્રીનાં વચનામૃત

सौजन्य : श्रीमती लाभुबेन चीमनलाल मोदी परिवार ह. हिनाबेन-विजयभाई तथा पारस मोदी

प्रश्नपत्र क्रमांक–६ (कुल मार्क्स-५०)

(अभ्यासक्रम : (१) गुरुदेवश्रीके वचनामृत क्रमांक २०४ से २३२,
(२) बहिनश्रीके वचनामृत क्रमांक २६८, से ३४२

परीक्षार्थीका नाम :... गाँवका नाम :.............

मंडलका नाम :.. वर्ष : ....

फोन नंबर :.. ता. -10-2011

सूचना : (1) प्रश्नपत्रके उत्तर हिन्दी अथवा गुजरातीमें लिख सकते हैं।
(२) प्रश्नोंके उत्तर वचनामृतके आधारसे देना आवश्यक है।

प्रश्न-१ : (अ) **यहाँ दिये गये विषयोंमेंसे किसी एक विषय पर १५ से २० पंक्तियोंमें मौलिक निबंध अपने शब्दोंमें लिखें। (गुरुदेवश्रीके वचनामृत)** **(9)**

(1) सर्वज्ञका निर्णय–स्वीकार करनेसे आत्मकल्याणका पुरुषार्थ कैसे होता है ? विस्तृत चर्चा करें। (बोल नं. 210)
(2) कर्ता, कर्म, करण आदि छ कारकरूपसे स्वयं आत्मा ही परिणमन करता है। (विस्तृत चर्चा करें)(बोल नं. 213)
(3) यह देह कैसा है ? यह देहको पवित्र कब कहा जायेगा ? (बोल नं. 229)

(ब) यहाँ दिये गये विषयोंमेंसे किसी एक विषय पर १५ से २० पंक्तियोंमें मौलिक निबंध अपने शब्दोंमें लिखें। (बहिनश्रीके वचनामृत) **(9)**

(1) क्या करनेसे चैतन्य प्रगट होता है ? उस वक्त ज्ञान कैसा विवेक करें ? (बोल नं. 321-322)
(2) मुनिराजकी साधना कैसी होती है ? उनको केवलज्ञानकी प्राप्ति होनेसे क्या होता है ? (बोल नं. 330)
(3) आत्मार्थीको अंतरमें किसके साथ एवं बाहरमें किसके साथ प्रयोजन रखना चाहिए ? क्यों ? (बोल नं. 342)

प्रश्न-२ : (अ) निम्न प्रश्नोंमेंसे किसी भी एक प्रश्नका अपने मौलिक शब्दोंमें वचनामृतके आधारसे उत्तर दिजिये। (पांच से दस पंक्ति) (गुरुदेवश्रीके वचनामृत) (3)

(1) बहिरात्मा निरंतर दुःखी है और धर्मात्मा निरंतर सुखी है। हेतु देकर समझाईये। (बोल नं. 206)
(2) मोक्षका हेतु क्या है ? और बंधका हेतु क्या है ? क्यों ? (बोल नं. 209)
(3) आत्माका स्वभाव कैसे पकड़में आता है ? (बोल नं. 219)

(ब) निम्न प्रश्नोंमेंसे किसी भी एक प्रश्नका अपने मौलिक शब्दोंमें वचनामृतके आधारसे उत्तर दिजिये। (पांच से दस पंक्ति) (बहिनश्रीके वचनामृत) **(3)**

(1) जीवका मूल स्वरूप बतानेवाले गुरुकी वाणी सुननेसे जिज्ञासु किस प्रकार जागृत हो जाता है ? चर्चा किजिए। (309)
(2) किससे आत्मा तिर सकता है ? किससे नहीं तिरा जाता ? भगवानकी महिमा समझनेकी क्या आवश्यकता है ? (बोल नं. 316)

(3) आत्मार्थी कैसे विचार करता है ? उसमें मूलभूत बात क्या है ? (बोल नं. 318)

प्रश्न-३ : (अ) यहाँ दिये गये प्रश्नोंके संक्षिप्तमें उत्तर दें। (6)

(1) आत्मार्थीको कब तक सुखसे नींद नहीं आती ?
(2) ''मुनिवरों को जगतके बाह्य विषयोंमें किंचित् भी आसक्ति नहीं होती'', क्यों ?
(3) सम्यग्दर्शन रहित सभी आचरण किस प्रकारसे व्यर्थ है ?
(4) चाहे जैसे संयोगमें, क्षेत्रमें, या कालमें जीव क्या करें तो मोक्षमार्ग एवं मोक्षको प्राप्त करें ?
(5) ''वक्ताको शास्त्र-प्रवचन द्वारा आजीविकादि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा नहीं होना चाहिए'' क्यों ?
(6) उत्तम शिष्य अपने गुणकी पर्याय विकसित करनेके लिए व्यवहारमें क्या करें ?

(ब) यहाँ दिये गये प्रश्नोंके संक्षिप्तमें उत्तर दें। (6)

(1) परिभ्रमण करते करते अनंतकाल बीत गया, वहाँ जीवने आत्माका करना है ऐसी भावना तो की, तो फिर क्या नहीं किया ?
(2) ज्ञानी किससे भयभीत है ? और किस प्रकार निर्भय है ? उन्होंने क्या छोड़ दिया है ?
(3) चैतन्यके साथ क्या एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है ?
(4) बाहरके-विभावके आनंद (सुखाभास)के साथ, किसके आनंदका मेल नहीं है ? तो सच्चा आनंद कैसे प्राप्त हो ?
(5) मुनिराज वंदना-प्रतिक्रमणादिमें लाचारीसे युक्त होते हैं ? क्यों ?
(6) आत्मा किसके बलसे अलग नहीं हो सकता ? किसके बलसे अलग होता है ?

प्रश्न-४ : (अ) नीचे दिए गए प्रश्नोंके उत्तर एक वाक्यमें दिजिये। (6)

(1) कौनसी विपदा वास्तवमें विपदा नहीं है ? कौनसी संपदा वास्तवमें संपदा नहीं है?
(2) श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने किन भगवानकी दिव्यध्वनि सुनी ? तदन्तर उन्होंने क्या किया ?
(3) मुनिराजका भावलिंग क्या है ? तथा उनका द्रव्यलिंग क्या है ?
(4) वर्तमानकालमें हमें उत्तम साथीके रूपमें कौन मिला है ?
(5) चैतन्यकी धरती किससे भरी हुई है ? क्या करनेसे वह लहलहा उठेगी ?
(6) कैसे प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है ? किसके मानसे दूर रहना अच्छा है ?

(ब) नीचे दिए गए प्रश्नोंके उत्तर एक शब्दमें दिजिये। (4)

(1) सम्यग्दर्शन कैसा 7रत्न है ?
(2) धर्मात्माको किसके प्रति अभेदबुद्धिसे परम वात्सल्य होता है ?
(3) जिसने शान्तिका स्वाद चख लिया उसे क्या नहीं पुसाता ?
(4) आत्मार्थीको किसके सान्निध्यमें पुरुषार्थ सहज ही होता है ?

(क) रिक्तस्थान भरिये। (4)

(1) संयोगोंके बढ़नेसे आत्माकी वृद्धि मानना वह तो.............................. हार जाना है।
(2) जिसको राग रुचता है वह................................ है।
(3) जीव राग और ज्ञानकी......................उलझ गया है।
(4) तत्त्वका उपदेश.................समान है। तद्नुसार परिणमित होने पर .... भाग जाता है।

पर्यायदृष्टिसे चार गतिरूप जो भवभ्रमण है सो भ्रम नहीं किन्तु सत्य है, तथापि निश्चय वह पर्याय आत्मामें त्रिकाल रहनेवाली नहीं है, आत्माका स्वभाव नहीं है, इसलिए वह अभूतार्थ है ।

—पूज्य गुरुदेवश्री

सुवर्णपुरी (सोनगढ़) समाचार—

❁ **सुवर्णपुरीका दैनिक क्रम** :क्रमशः प्रातः ऑडियो टेप द्वारा पूज्य बहिनश्रीकी देवगुरुभक्ति एवं धर्मचर्चा, जिनेन्द्र–दर्शनपूजा, पूज्य गुरुदेवश्रीका परमागम श्री समयसार पर CD–प्रवचन; श्री प्रवचनसार पर शिक्षणवर्ग, अपराह्न श्री प्रवचनसार पर CD–प्रवचन, पूज्य बहिनश्रीके चित्रपट समक्ष उपकृतभावभीगी स्तुति, जिनमन्दिरमें जिनेन्द्रभक्ति; सायं पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री इष्टोपदेश पर CD प्रवचन। यह कार्यक्रम नियमित चल रहा है।

* इस वर्ष भादों माहका पर्युषणपर्व ज्ञानवैराग्यभीनी तत्त्वोपासना, मुनीन्द्रमहिमा, पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी उपकारमहिमाकी दृष्टिसे प्रभावनापूर्ण रहा। पर्युषणपर्व आराधनाके लिये बाहरगाँवसे अनेक मुमुक्षु महेमान पधारे थे। विधानपूजाके समय विशाल परमागममन्दिर और प्रवचनके समय स्वाध्यायमन्दिर भर जाते थे। क्षमावणीपर्वके दिन, इस साधनातीर्थकी पवित्र यात्रा एवं पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्रीके प्रति क्षमावणीस्तुतिपूर्वके क्षमायाचनाके लिये राजकोट एवं अन्य गाँवोंसे सब मिलकर ५०० से अधिक मुमुक्षु महानुभाव आये थे ।

❁ 'समयसार गुर्जरभाषा अनुवाद' पूर्णाहुतिका वार्षिक दिन-विजयादशमी ❁

श्री समयसार परमागमका पंडितरत्न श्री हिंमतलाल जेठालाल शाह द्वारा किये गये गुर्जर भाषा अनुवादकी पूर्णाहूतिका वार्षिकदिन, आसो शुक्ल दशमी (विजयादशमी) ता. ६-१०-२०११ गुरुवारके रोज ग्रंथाधिराज श्री समयसारकी, विशेष भक्तिपूर्वक मनाया गया।

❁ महावीरनिर्वाण–पंचाह्निक–महोत्सव ❁

प्रतिवर्षानुसार 'श्री महावीर-निर्वाणकल्याणक'—दीपावलिका वार्षिक मंगल अवसर कार्तिक वदी दसम, शनिवार, ता. २२–१०–२०११ से कार्तिक वदी ३०, बुधवार, ता. २६–१०–२०११, पाँच दिन तक 'श्री जिनेन्द्रपंचकल्याणकमंडलविधानपूजा', महावीरजिनेन्द्रभक्ति, एवं अध्यात्मज्ञानोपासना आदि विविध कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❁ 'सुप्रभातदिन' ❁

कार्तिक सुदी-१—नूतन वर्षारंभका 'सुप्रभातदिन' ता. २७–१०–२०११, गुरुवारके दिन सुप्रभातस्तोत्र, पूजाभक्ति एवं गुरुदेवश्रीके सुप्रभात-प्रवचन आदि विशेष समारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

❁ कार्तिकी-नन्दीश्वर-अष्टाह्निका ❁

कार्तिक सुदी ८, गुरुवार, ता. ३-११-२०११, से कार्तिक सुदी १५, गुरुवार, ता. १०-११-२०११—आठ दिन तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्वज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

ग्रंथोपम 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

['बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्रीके द्वारा १८१ प्रवचन हुए हैं। उसमेंसे वचनामृत वोल ५३का प्रवचन दिया जा रहा है।]

वचनामृत-५३

निवृत्तिमय जीवनमें प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीरका रोग मिटना हो तो मिटे, परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहरका कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं॥ ५३ ॥

'निवृत्तिमय जीवनमें प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।'

भीतर रागरहित चैतन्यमूर्ति ज्ञायक प्रभु निवृत्त तत्त्व है। उसके आश्रयसे जिसने निवृत्तिमय जीवन किया है उसे रागादिकी प्रवृत्तिमय जीवन नहीं रुचता। लड़केकी बहू पाँच हजारकी साड़ी पहनकर बजारमें निकले, वहाँ जवान लड़के तो उसे अन्य दृष्टिसे देखते हैं, परन्तु ससुरको ऐसा लगता है कि देखा, बहू की साड़ी हजारोंमें एक लग रही है ! इसमें हमारा श्रीमन्तपना प्रकट होता है, हमारी विशेषता दिखायी देती है ! यह क्या कर रहा है भाई ! अरे ! निवृत्तिमय ज्ञायक प्रभुको बाह्य रागका इतना अधिक रस कैसा ?

शरीरकी, व्यापारकी, रसोई–पानीकी आदि बाह्य प्रवृत्ति तो कहीं रह गई, परन्तु भीतर जो भक्तिके भाव आयें, स्वाध्यायके भाव आयें, प्रवचन सुननेके भाव आयें—ऐसे प्रवृत्तिमय परिणाम भी निवृत्तिमय जीवनके प्रेमीको अच्छे नहीं लगते। अंतरमें जहाँ परिणमन ही रागकी ओरसे दूर हट गया है उसे रागमय परिणामकी प्रवृत्ति कैसे रुचेगी ? भगवान आत्मा रागरहित निवृत्त तत्त्व है—उसमय जीवन ही अच्छा लगता है।

'शरीरका रोग मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती।'

शरीरकी व्याधि मिटना हो तो मिटे परन्तु उसके लिये यह दवा लूँ और वह दवा लूँ, ऐसा करूँ तो आराम मिले–आदि प्रवृत्ति–निवृत्तिके प्रेमीको अच्छी नहीं लगती। रोग मिटानेके लिये बड़े-बड़े डॉक्टरों और वैद्योंको बुलाओ, अच्छी से अच्छी औषधियाँ मँगाओ,—ऐसी शरीरके हेतु होनेवाली प्रवृत्तियाँ अच्छी नहीं लगती। वह तो मानता है

(शेष देखे पृष्ठ १६ पर)

आत्मधर्म
अक्तूबर २०११
अंक-२ ❀ वर्ष-६

Registered. Regn. No BVR-368/2009-2011
Renewed upto 31-12-2011
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क ९=०० आजीवन शुल्क १०१=००

'तू परमात्मा है' ये गाजे गुरुवाणी,
संतोंकी साधनाभूमि सुंदर स्वर्णपुरी।

Printed & published by Jitendra Vrajlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Kahan Mudranalay, Jain Vidhyarthi Gruh, At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Kantilal Maheta.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org